समीक्षा

समीक्षा एवं शोध त्रैमासिक

अप्रैल-जून, 2016

वर्ष 49, अंक 1

संस्थापक सम्पादक

गोपाल राय

सम्पादक

सत्यकाम

संयुक्त सम्पादक

अमिताभ राय

समीक्षा

ISSN : 2349-9354

अप्रैल-जून, 2016

वर्ष: 49, अंक : 1

प्रकाशन तिथि : 20 जून, 2016

मूल्य :

एक प्रति: *तीस रुपये*

संस्थाओं के लिए : *पचास रुपये*

वार्षिक सदस्यता : *दो सौ रुपये (डाक खर्च सहित)*

संस्थाओं के लिए : *तीन सौ रुपये (डाक खर्च सहित)*

आजीवन सदस्यता : *पांच हजार रुपये (डाक खर्च सहित)*

सम्पर्क:

समीक्षा

द्वारा *अमिताभ राय*

803, अमलतास, शिप्रा सृष्टि अहिंसा खंड-1,

इंदिरापुरम-201014, उ.प्र.

मोबाइल : 09582502101

ईमेल : sameekshatraimasik@gmail.eom

निवेदन: कृपया सारे भुगतान केवल बैंक ड्राफ्ट अथवा ई-ट्रांसफर द्वारा निम्न चालू खाता संख्या: 2257002100011106, IFSC Code: PUNB0225700, पंजाब नेशनल बैंक, इग्नू, मैदानगढ़ी, दिल्ली-110068 में कीजिए। बैंक ड्राफ्ट 'समीक्षा' को नई दिल्ली में देय होगा। ड्राफ्ट उपरोक्त पते पर भेजें।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

पत्रिका का अंक न मिलने पर इसकी सूचना उपरोक्त पते पर दें अथवा उपर्युक्त नं. पर सम्पर्क करें।

'समीक्षा' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। सम्पादक, संयुक्त सम्पादक पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

किसी भी विवाद की स्थिति में न्यायाधिकरण, दिल्ली होगा

आवरण चित्र: सावित्री दूबे

अनुक्रम

संपादकीय		4
संस्मरण		
मेरो तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई		6
पुरानो सेई दिनेर कथा	शत्रुघ्न कुमार	8
नवांकुर		
सूक्ष्मतम नाटकीय अंतर्दृष्टि की अप्रतिम अभिव्यक्ति: 'हैमलेट का हिन्दी रूपांतर'	[illegible]	10
साक्षात्कार		
मैं स्थापित होने के लिए आज भी संघर्षरत हूँ	कांचन कुमारी	13
कविता		
बस एक आँगन है चौकोर	अजितकुमार	18
दुबारा इसी दुनिया में	आशुतोष कुमार	20
समय लेता आकार	मृत्युंजय उपाध्याय	23
अँधेरे में रोशनी की तलाश करती कविताएँ	वेदप्रकाश अमिताभ	25
शाश्वत संघर्ष की कविताएँ	जगन्नाथ प्रसाद दुबे	27
बेबाक कविताओं की दुनिया	अरमान आनंद	30
प्रकृति के आँगन में थिरकता मन	संदीप जायसवाल	34
आत्मकथा		
आत्म से सर्वात्म की ओर	पूनम सिन्हा	37
डायरी		
बच्चों की दुनिया में बड़ों का स्वागत		41
कला		
मधुबनी चित्रकला	[illegible]	44
सुर साधकों से आत्मीय संवाद	[illegible]	46
उपन्यास		
'हिन्दू' समाज और संस्कृति का महाख्यान	अनिल राय	48

आलोचना/इतिहास/शोध

विश्व मिथक कथासरित्सागर: फूटा कुम्भ, जल जलहिं समाना — अनामिका — 53

आलोचना

सामाजिक विमर्श के आईने में 'चाक' — कृष्ण चन्द्र लाल — 57

'मीर' पर दो नायाब ग्रंथ — राजेन्द्र टोकी — 60

बाबा खुद एक मैग्नीफाइन्ग ग्लास हैं — हर्षबाला शर्मा — 63

कहानी आलोचना के नए आधारों की पहचान — शशिभूषण मिश्र — 66

कथा विवेक का सजग अन्वेषण — प्रणव कुमार ठाकुर — 69

पुस्तक परिचय

प्रेमाभक्ति: भक्तिकाव्य का उत्तरार्ध — नंद किशोर — 12

भारतीय चिन्तन परम्पराएँ: नए आयाम, नई दिशाएँ — जसविन्दर कौर बिन्द्रा — 26

गंगा तट से भूमध्यसागर तक — जसविन्दर कौर बिन्द्रा — 72

'हिन्दू': समाज और संस्कृति का महाख्यान

अनिल राय

प्र. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली- 110002
प्र. सं. 2015. पृ. सं. 548. ₹ 800/-

मराठी के लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार भालचन्द्र नेमाड़े की नवप्रकाशित रचना 'हिन्दू' कई मायनों में भारतीय साहित्य की एक बड़ी उपलब्धि है। अपनी धारदार अभिव्यक्ति-शैली के लिए विख्यात नेमाड़ेजी को उनके समग्र कृतित्व के लिए 50वें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। भारतीय समाज की सदियों पुरानी परंपराओं, मान्यताओं और कुरीतियों की परतों को कुरेदकर उसके यथार्थ को आइना दिखाने का जो साहस उनके पास है, वह उन्हें एक बड़े रचनाकार के रूप में स्थापित करता है। 'हिन्दू' किसी धर्म या जाति की विसंगतियों के प्रतिरोध मात्र का आख्यान नहीं है, बल्कि उन तमाम जटिल अंत:संबंधों, संवेदनाओं और परंपराओं का एक संपूर्ण लेखा-जोखा है, जो व्यक्ति से लेकर परिवार, परिवार से लेकर गाँव, गाँव से शहर और अंतत: पूरे राष्ट्र के स्तर पर अपने क्लिष्ट अंत:सूत्रों द्वारा बँधा हुआ है।

3qन्यास का नायक मराठी युवक खंडेराव है, जिसका पैतृक गाँव मराठवाड़े का मोरगाँव है। पिता बिठ्ठलराव गाँव के प्रतिष्ठित मुखिया हैं, जिनका सामाजिक दबदबा गाँव वालों में है। स्वयं खंडेराव के शब्दों में "स्वातंत्र्य/ राजनीति/ अपने-अपने लोगों के लिए खपना। सत्ता का मोह छोडकर पिताजी द्वारा अपनाई गई मुफ्त की मुखियागिरी। हमारे बचपन में अंग्रेजी राज में किसानों की क्या औकात थी? अब दर्जनों सोसाइटियों के संचालक मंडल, बैंकों के अध्यक्ष विधायक-सांसद-नेतागिरी। पिताजी के बगैर कितने ही लोगों का पत्ता तक हिलता था। सौ लोगों का पेट पालने वाले। सुबह होते ही मिलने वालों का ताँता-मजदूर, दिहाड़ीदार, महीनादार, सालदार (सालाना मजदूर), किराएदार, पहरेदार...क्या ऐसा जानलेवा कारोबार होगा मुझसे? कितनी भ॥।दौड़ी? न जाने कितने लोगों की मदद किया करते थे वे। रिश्ता जोड़ने वालों से लेकर तोड़ने वालों तक-सभी पिताजी को अपने साथ चाहते थे, सहारे के लिए।" खंडेराव को इतिहास-पुरातत्त्व के अध्ययन व शोध में गहन रुचि है। ग्रामीण कृषक-जीवन उसमें ऊब पैदा करता है। खंडेराव का बचपन गाँधी के नेतृत्व में चल रहे स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि में मोरगाँव में बीता है। वह बाल्यकाल के गँवारू अभावों, उपेक्षा व जलालत जन्य आक्रोश का अपने शोध-सेमिनारों में उपयोग करता है। खंडेराव जीवन के उस दोराहे पर खड़ा है, जहाँ उसे निर्णय लेना अत्यंत दुष्कर हो जाता है कि वह अपनी रुचि व गति के अनुरूप अध्ययन व शोध की बौद्धिक दुनिया में अपना वजूद सँवारे या घर का इकलौता वारिस होने के नाते पिता

विट्ठलराव की पैतृक जिम्मेदारी सँभाले। उसके भीतर अन्तर्द्वन्द्व का तूफान मथ रहा है। विचारों के उठा-पटक में डूबते-उतराते खंडेराव की मनोस्थिति उपन्यास में अंकित हुई है।

नेमाड़े जी का लगभग साढ़े पाँच सौ पृष्ठों का यह वृहत् उपन्यास छः खंडों में विभक्त है। खड एक में सदियों पुराने ब्राह्मणवाद का उग्रतम रूप और उसके प्रतिरोधस्वरूप खंडेराव का आक्रोश प्रस्फुटित होता है जिस प्रकार अन्यायी-आततायी क्षत्रिय राजाओं से धरा को मुक्त कराने के लिए परशुराम का आगमन हुआ, उसी प्रकार यहाँ ब्राह्मणवादी जंजीरों से समाज को मुक्त कराने के लिए नायक खंडेराव का अभ्युदय होता है। अपने स्वर्णिम अतीत के नाम पर जंग खाए कबाड़ का ढेर भरने वाले समाज की भर्त्सना वह बड़े ही गर्जना भरे स्वर में करता है- "हे सोम पीकर होम जलाने वाले ब्राह्मण, स्तोमवक्कड़ो, अर्क में गर्क होकर तर्क करते रहने वाले ककों, यज्ञ की सेवा के लिए रखी गई हमारी सुंदरियों से लावारिस संतति पैदा करने वालों, धूत में दामिनी सदृश्य अपनी पत्नी का दाँव लगाकर उसे हारने के बाद उन्हें बच्चों समेत अपनी किस्मत के सहारे छोड़ देने वाले जुआरियों, ये देखो इक्कीस बार इस पृथ्वी को निर्ब्राह्मण करने के लिए बैट्ठल खंडेराव आया है।....." दरअसल अतीत-विचरण का जो खजाना हिंदू संस्कृति में उपराया जाता है, वह शायद विश्व की अन्य किसी संस्कृति में दुर्लभ है। नेमाड़े जी ने यहाँ उन तमाम बिंदुओं की बड़ी सूक्ष्म पड़ताल की है, जो हिंदू संस्कृति के वे स्याह पक्ष हैं जिनकी कालिमा में समाज न तो ईमानदारी से अपना सच देख पाता है और न ही उसके अंदर कुछ देखने-समझने की उत्कंठा पैदा होती है। जिस समय दुनिया के अन्य देश नित्य वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा अपनी नई पहचान दर्ज करा रहे हैं, यह देश आज भी अपने अतीत के समृद्ध कबाड़ को सिर पर उठाए घूम रहा है। नेमाड़े जी का सरोकार और उनकी चिंता देश की व्यर्थ में व्यय हो रही ऊर्जा और क्षमता से है।

ब्रिटिश शोधार्थी मंडी , जो भारतीय पुरातत्त्व पर शोध करने हिंदुस्तान आई है, वह प्रोटेस्टेंट दर्शन से संस्कारित स्त्री चरित्र है। यहाँ की धार्मिक कट्टरता और जटिल कर्मकांड उसके गले नहीं उतरते, क्योंकि पूरी सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था में उसे अमानवीयता की मौजूदगी दिखाई देती है। नायक खंडेराव की एक बुआ को बचपन में ही महानुभाव संप्रदाय में दीक्षित कर संन्यासिनी बना घर-निकाला दे दिया गया था, वह भी घर के लड़के के दीर्घायु होने एव सलामती के लिए यह उस क्रूर समाज की भयावह सोच है जहाँ लड़कों को तो कुलदीपक माना जाता है और लड़कियों को उनके जन्म से पहले ही मठ या मंदिर में दान की जाने वाली वस्तु समझा जाता रहा है। अंधविश्वास और परंपरा की शूली पर लटकाई गई तिरोनी बुआ की मूक बेबसी खंडेराव को विचलित कर देती है।

भारतीय समाज में वर्ण-वैषम्य, अस्पृश्यता, स्त्री-उत्पीड़न जैसी अनेक समस्याओं से लेखक का यहाँ मुठभेड़ होता है। उपन्यास में अस्पृश्यता जैसी अमानवीय सच्चाईयों का दंश सहते दलित-वंचित समाज में बौद्ध-धर्म के प्रति आकर्षण का यथार्थ भी अनेक प्रसंगों में व्यक्त हुआ है।

उपन्यास के खंड दो में मराठों का बहुस्तरीय इतिहास अंकित है, जहाँ ऐतिहासिक घटनाओं के समानांतर समाज, धर्म और संस्कृति के अंतःसंबंधों का एक पूरा यथार्थ-लोक मौजूद है। यहाँ रूढ़ियों एव कुप्रथाओं की जंजीरों से बँधे पैरों से घिसट-घिसट कर चलने के पदचिह्न खुदे हुए हैं। मराठों द्वारा पिंडारियों को बढ़ावा देना, होलकर के पिंडारियों द्वारा लभानों पर आक्रमण, उनकी हत्या व लूट, 1857 के विद्रोह का राष्ट्रव्यापी प्रभाव जैसी अनेकानेक ऐतिहासिक घटनाओं के सूत्रों द्वारा कथा की पृष्ठभूमि तैयारी की गई है। मोरगाँव, जो समूची घटनाओं का मूक साक्षी रहा है, नेमाड़े जी ने उसकी भौगोलिक स्थिति स्पष्ट करते हुए इसके निवासियों के सामाजिक-आर्थिक यथार्थ को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। बाहरी आक्रमणकारियों से स्वयं को बचाने की जद्दोजहद में मोरगाँव के संघर्ष का पूरा इतिहास यहाँ दर्ज हुआ है।

उपन्यास के इस खंड में सदियों से स्त्रियों पर लादी गई पराधीनता की एक-एक परत की गहरी छानबीन की गई है। लभानी (गणिका) समुदाय की स्त्रियाँ, जिन्हें समाज ने कभी सम्मान की नजर से नहीं देखा वे प्रतिष्ठित स्त्री-समाज की दुर्गति पर गंभीर सवाल खड़े करती दिखाई पड़ती हैं। लड़की और लड़के के जातीय लिंग-भेद की बीमारी से ये लभानियाँ बहुत दूर हैं- "लड़का होने पर इनकी कोठी में मायूसी का माहौल दिखाई देता। लड़की होने पर गाँव में हंडे दो हंडे रबड़ी बाँटी जाती।..... मध्यवर्गीय हिंदू लड़कियों जैसे जानलेवा संस्कार यहाँ नहीं होते। सिलाई टाँका, झाड़ू, पटका, दूध, रसोई बर्तन-धुलाई और बाद में पढ़ाई की कैंची, शादी के बाजार में अपमान, दहेज, मारपीट का स्पर्श भी कई पीढ़ियों से इन लड़कियों को नहीं हुआ। मुक्त स्वातंत्र्य।..." स्त्री-जीवन के अनेक पीड़ादायक यथार्थ नेमाड़े जी ने यहाँ रेखांकित किए हैं। स्त्री को भोग्या व सेविका मात्र बनाकर कैद में रखने वाले समाज के गाल पर उन्होंने जगह-जगह तमाचे मारे हैं। ऐसा ही एक प्रसंग है कौआ भाई और गौरैया बहन के संवाद का, जिसे घर की छोटी-छोटी

लड़कियाँ खेल-खेल में गाती हैं- "गौरैया दीदी गौरैया दीदी क्या करती हो?/ चूल्हा जला रही हूँ कौआ भाई/गौरैया दीदी गौरैया दीदी क्या करती हो?/ रोटी बना रही हूँ कौआ भाई/गौरैया दीदी गौरैया दीदी क्या करती हो?/ सब्जी बना रही हूँ कौआ भाई/..... गौरैया दीदियों, कितने ये व्यंजन? आपका काम कब खत्म होगा? गौरैया दीदी गौरैया दीदी क्या करती हो?/ बच्चे को नहलाती हूँ।..... धत् बच्चे का हगना मूतना और न जाने क्या-क्या, ऊपर से कितनी देर? बच्चे को पिलाती हूँ, सुलाती हूँ, दीठ लगाती हूँ।..... बर्तन माँजती हूँ। फिर एक-एक बर्तन। बाप रे! इतने बर्तन माँजने हैं रोज? फिर क्या करती हो? तो कपड़े धोना। इतने कपड़े रोज? गौरैया दीदी आज क्या तो पानी भर रही हो? अब क्या पानी का छिड़काव कर रही हो? अब क्या बिस्तर बिछा रही हो? गौरैया दीदी गौरैया दीदी यह सब तुम कैसे सहती हो? बस यही एक सवाल तुम्हारा कौआ भाई तुमसे पूछता है।....." यह सवाल बेमाड़े जी ने उस सभ्य हिंदू समाज से पूछा है जो अपनी संस्कृति को सोने से मढ़ाए नहीं अघाता।

खंड तीन में भारतीय विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा की दुर्दशा, शिक्षा-संस्थानों में निरंतर बढ़ रहे आपराधिक व राजनीतिक हस्तक्षेप, निरंकुश होती जातिवादी मनोवृत्ति जैसी अनेक समकालीन वास्तविकताओं को नेमाड़े जी ने खुलकर स्वर दिया है। इस प्रकार के यथार्थ-अंकन में उन्होंने अपने व्यंग्य-कौशल का भी पूरा उपयोग किया है। बड़ौदा के समाजीराव विश्वविद्यालय परिसर से इस खंड की शुरुआत होती है और अगले ही क्षण फ्लैशबैक का सहारा लेकर इसकी कथा पुनः मोरगाँव पहुँच जाती है। ऐसी स्थिति में कथात्मक सूत्रों की अनगिनत गुत्थियों को सुलझाते हुए आगे पढ़ना पाठक के लिए एक बड़ी चुनौती बन जाती है। खंडेराव की बिंधु का नाटकीय जीवन यहाँ स्त्री-उत्पीड़न की पराकाष्ठा के रूप में व्यक्त हुआ है। उसका दोष मात्र इतना है कि वह ऊँटमारे देशमुख परिवार की बहू है और यहाँ वह दो लड़कों की नहीं, दो लड़कियों की माँ है। उसका पति उसे इतनी यातनाएँ देता है कि वह ईश्वर से स्वयं अपने वैधव्य तक की याचना कर डालती है- "रोट चढ़ाऊँगी तुझे भवानी माँ/ माँगती हूँ मनौती, पति को मार दे/ रोट चढ़ाऊँगी तुझे भवानी माँ।"

उपन्यास के इस अंश में ऊँटमारे देशमुख परिवार के बरक्श रैयतवाड़ी जमींदारी प्रथा और महाजनी सभ्यता की भयावह छवियाँ अंकित हैं, जिनमें गाँवों के गरीबों-वंचितों की चीखें कैद हैं। इसी के साथ ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में किसानों का खून पीकर अपनी मूँछे ऐंठने वाले रायबहादुरों व जमींदारों-सामंतों के रुतबे व विलासितापूर्ण जीवन की अनगिनत तस्वीरें लेखक ने प्रस्तुत की हैं। सरकारी महकमों में व्याप्त भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी की सड़ांध और उसके प्रति समाज में सम्मोहन की भाव हमारे सभ्य समाज की असलियत बयाँ करता है।

सामाजिक यथार्थ के समानांतर भारतीय स्वाधीनता-आंदोलन की अनुगूंज भी यत्र-तत्र-सर्वत्र जगह-जगह सुनाई पड़ती है। मोरगाँव भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विद्रोह की चिनगारी जितनी गति से मराठवाड़े में उठी उतनी ही बेरहमी से अंग्रेजों द्वारा इसका दमन भी चल रहा था। वहीं आंदोलन रत भारत में कुछ ऐसी जनजातियाँ थीं जो गुलामी और आजादी के अर्थ और भेद से बिल्कुल अनजान। नेमाड़े जी ने आजाद भारत की गुलामी की पीड़ा को मीलों द्वारा उठाए गए सवालों के माध्यम से कुछ-यूँ व्यक्त किया है- "कैसा देश? कैसी आजादी? अगस्त? ये किसका नाम है। महीने का नाम? महीना तो आषाढ़ चल रहा है। कौन गुलाम था? हम तो पहले से ही आजाद हैं।..... देश के आजाद या पराधीन हो जाने पर देश का एक-एक नागरिक पराधीन या आजाद हो जाता है। लेकिन यह कैसे संभव था कि कुछ लोग पराधीनता में भी आजाद थे।..... वही लोग अब आजादी में भी पराधीन हो गए हैं।"

देश स्वतंत्रता संघर्ष के व्यापक दौर से गुजरता हुआ स्वतंत्रता-प्राप्ति तक पहुँचता है। कथात्मक धरातल पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचार-प्रसार की लहर के बीच पेशावर से रामेश्वरम तक अखंड भारत के मानचित्र पर लगभग दस हजार की संख्या में भगवा ध्वज फहराने लगते हैं। धीरे-धीरे यह ध्वज मोरगाँव भी पहुँच जाता है। रातोंरात 'मोरगाँव' 'मौर्यग्राम' के रूप में उच्चरित होने लगता है। शाखाओं में बढ़ रहे ब्राह्मणवाद के वर्चस्व को नेमाड़े जी ने अपनी आँखों से देखा था। और देखते-देखते संघ के परिसर में ब्राह्मणवाद की नींव और भी पुख्ता होती चली गई। बौद्ध धर्म, जो ब्राह्मणवादी अत्याचार के विरुद्ध मानवतावाद का पर्याय बनकर खड़ा हो रहा था, लेखक के अनुसार वह संघ के निशाने पर आ गया। इतना ही नहीं, 'हिंदू' की कथा के अनुसार संघ की शाखाओं में मुसलमानों के विषय में जो धारणा बनाई गई वही मोरगाँववासियों के मन-मस्तिष्क में रच-बस गई। तत्कालीन भारत की इन तमाम छोटी-बड़ी घटनाओं का सिलसिलेवार ब्यौरा 'हिंदू' के कथात्मक विकास में एक बड़ी भूमिका निभाता है। 'भारतमाता की जय' के नारे पर संघ के बलाघात और उसके पक्ष-विपक्ष के संवाद भी यहाँ बड़ी सजगता से रेखांकित हैं। जहाँ एक ओर संघ का प्रचारित यह नारा है, वहीं दूसरी ओर महाराष्ट्र के संतों का समाज-दर्शन है, जिसमें

केवल भारतमाता की ही जय नहीं, बल्कि पूरे विश्वमानव की जयकार की गई है। स्वाधीनता आंदोलन में क्रमशः गाँधी, पटेल, नेहरू, जिन्ना आदि की भूमिकाओं का उल्लेख व देश-विभाजन की त्रासदी का उद्घाटन करते हुए खंड तीन समाप्त होता है।

उपन्यास के खंड चार में कथा मोरगाँव की सामाजिक सांस्कृतिक गुत्थियों से टकराती हुई उच्च-शिक्षा के संस्थानों की दुर्दशा पर आकर ठहर जाती है। खंडेराव के मैट्रिक पास करने और बी.ए. में प्रवेश लेने के साथ-साथ उपन्यास भी नए कॉलेज खुलवाने से लेकर उनमें नियुक्तियों की प्रक्रिया में व्याप्त भ्रष्टाचार का खुलासा करने का साहसिक प्रयास दिया गया है1 उपन्यासकार की दृष्टि में यही वह समय था, जहाँ से भीड़ के भीड़ बेरोजगार ग्रेजुएट-पोस्ट ग्रेजुएट बनाने का कभी न खत्म होने वाला सिलसिला शुरू होता है1 पेशे से शिक्षक होने के नाते लेखक ने भारतीय उच्च शिक्षा की वास्तविकता को बहुत नजदीक से देखा-समझा है। शिक्षा के मंदिर में आई नैतिक गिरावट उन्हें परेशान करती है। वे इसके जिम्मेदार कारणों का अध्ययन विश्लेषण करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पतन और ह्रास के सभी कारणों में से सबसे बड़ा कारण है संस्थाओं में योग्य समर्पित व शीलवान शिक्षकों का अभाव। यह बीमारी देश की प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा के सभी संस्थानों में घुन की तरह लगी हुई है- "कुछ प्राध्यापक ऐसे भी थे जिनके कुछ-न-कुछ निजी पूरक धंधे भी थे और जो अब मुख्य बन बैठे थे1 खेती तो सभी की थी1 एक की दलाली की दुकान थी, दूसरे की आटे की चक्की थी और तीसरे की तो कॉलेज के पास ही कपड़े की दुकान थी1 पर्मानेंट होते ही ये सभी बड़ी-बड़ी पार्टियाँ देते।...... इसके अलावा तृतीय श्रेणी के चपरासी, सफाईकर्मी प्यून वगैरह तो अधिकांशतः पदाधिकारियों के दामाद या भांजे होते।"

खंडेराव के सबसे पसंदीदा शिक्षक रहे डॉ. शशि भावे, जिनके संपर्क में आने के बाद उसके अंदर इतिहास व पुरातत्त्व में शोध के प्रति गहन रुचि व उत्कंठा पैदा हुई1डॉ. भावे ने ही खंडेराव को जीवन का यह फलसफा दिया- "देखो खंडेराव, जिंदगी में कोई भी चीज बरबाद नहीं होती अलबत्ता जिंदगी जरूर बरबाद हो जाती है।"

इसके पश्चात् 'हिंदू' की कथा सामाजिक विकास के उस दौर में पहुँचती है, जब गाँव का युवक पुश्तैनी कृषि-कार्य छोड़कर शहरी रोजगार के प्रति आकर्षित हो रहा था। जिसके अपने सामाजिक आर्थिक कारण थे1 खंडेराव का मित्र रघुनायक भी इसी प्रक्रिया में शहर जाकर ट्रक ड्राइवरी का काम करता है1 खंडेराव के लिए मोरगाँव में रहकर पढ़ाई-लिखाई के साथ खेती-बाड़ी का संतुलन बनाना अत्यंत दुष्कर कार्य था। वह जहाँ एक ओर प्राचीन इतिहास व पुरातत्त्व के शोध-अनुसंधान का चिरपिपासु है, वहीं उस किसान का बेटा है जिसकी दृष्टि में खेती-बाड़ी से अधिक सम्माननीय व श्रेष्ठ व्यवसाय और कोई नहीं1 यही परिस्थितियाँ एक दिन खंडेराव के अंतर्मन में गंभीर द्वन्द्व पैदा करती हैं1

उपन्यास के खंड पाँच की शुरुआत रघुनायक के औरंगाबाद पहुँचने के साथ होती है। औरंगाबाद का शहरी परिवेश और वहाँ की सामाजिक जीवन-शैली इस प्रसंग में साकार हो उठी है। यहाँ पहुँचकर खंडेराव पर्यटन विभाग के 'गाइड' का कोर्स करता है। एक महीना पाँच सितारा होटल में उसका खाना-पीना, रहना मुफ्त। देश के बड़े-बड़े विशेषज्ञों द्वारा चित्रकला, स्थापत्य कला, प्राचीन इतिहास, परिवेश विज्ञान, युद्ध विज्ञान, हिंदूलॉजी और म्यूजियोलॉजी जैसे विषयों पर व्याख्यानों को सुनता-आत्मसात् करता खंडेराव मोरगाँव की पथरीली-जमीन से उड़ान भरता हुआ इतिहास-पुरातत्त्व के एक शीतल-शांत लोक में कहीं खोने लगता है। गाइड के [illegible] [illegible] में अव्वल आया खंडेराव 'सर्वोत्कृष्ट मिस्टर गाइड' का पुरस्कार भी प्राप्त करता है1

भारतीय उच्च शिक्षा की बहुविध विसंगतियाँ भालचंद्र नमाड़े को बार-बार व्यथित करती हैं। विश्वविद्यालयी शिक्षा व्यवस्था में अ1मूलचूल सुधार की जरूरत को समझते हुए उन्होंने यहाँ इंग्लैंड से पी-एच.डी कर लौटे पवार सर को इसकी जिम्मेदारी सौंपी है जो वर्तमान व्यवस्था के प्रति नेमाड़ेजी के असंतोष व सुधारवादी चेतना को दर्शाती है- "...... उनका कहना था कि राजनेताओं के प्यादों के कुलपति बनने के कारण विश्वविद्यालयों में सुस्ती आ गई है। कुलपति नियुक्ति को समिति पर मुख्यमंत्री का प्रतिनिधि नहीं चाहिए, क्योंकि इसीकारण मुख्यमंत्री द्वारा सुझाया गया नाम पैनल में अपने आप आ जाता है और राज्यपाल भी वही नाम उठाते हैं1...... ये सब बदलना चाहिए। विश्वविद्यालय केवल ज्ञान क्षेत्र के लोगों के ही होने चाहिए। परीक्षा-पद्धति, विश्वविद्यालय कानून, नियम, अधिनियम, अध्यापन पद्धतियाँ, पाठ्यक्रमों का निर्धारण- सबमें अमूलाग्र बदलाव आना चाहिए, वरना इस अर्द्ध सदी में विश्वविद्यालय ढह जाएंगे।" पवार सर के उक्त कथन में कहीं-न-कहीं नेमाड़े जी का ईमानदार व समर्पित प्राध्यापकत्व झलकता है।

नवोदित पत्रकार अनंतराव, दलित कवि वी.सी. वानखेड़े और मच्छिंदर मानकापे के साथ खंडेराव की बुद्धिजीवी चौकड़ी बनाना, समाज के गंभीर मसलों पर नित्य चर्चा-परिचर्चा व अविराम संवादों से खंडेराव के बौद्धिक चरित का उन्नयन होता है। यह एक ऐसा प्लेटफॉर्म था, जहाँ वर्ण-व्यवस्था,

जाति-व्यवस्था, शिक्षा, राजनीति आदि विषयों पर खुलकर बहसें होती हैं। वोट-बैंक की ओछी राजनीति के शिकार भारतीय विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं के नाम-परिवर्तन का जो सिलसिला उपन्यासकार ने देखा उसकी सशक्त अभिव्यक्ति 'हिंदू' में हुई है। औरंगाबाद के शिक्षण-संस्थान के नाम परिवर्तन और उसके पक्ष-विपक्ष में मचे महाभारत का बड़ा ही जीवंत प्रसारण इस उपन्यास में किया गया है। भारतीय विश्वविद्यालयों की दशा कुछ इस प्रकार है- "नाम-परिवर्तन के झमेले में पहले साल हमारी कक्षाएँ जैसे-तैसे तीन महीने नियमित चलीं। दूसरे साल केवल एक महीना कक्षाएँ हुईं। अलीगढ़ विश्वविद्यालय तो अठारह दिन ही खुला था। मुंबई विश्वविद्यालय गर्मियों, सर्दियों और क्रिसमस की छुट्टियों को जोड़कर अधिकृत रूप से साढ़े चार महीने बंद रहता है।...... ये हैं हमारे कुलपति। कुल मिलाकर बेशर्मी में यहाँ कोई हार नहीं मानता।"

पवार सर, जिनका पूरा जीवन शोध-अनुसंधान के लिए समर्पित है उन्हें भी विश्वविद्यालय के राजनीतिक दुष्चक्र में फँसा दिया गया है। प्रो. दवे, प्रो. पाटील आदि प्राध्यापकों के चरित्रांकन द्वारा नेमाड़े जी ने अपने विश्वविद्यालयी जीवन के अनुभूत सत्य को बड़े ही सशक्त रूप में व्यक्त किया है। औरंगाबाद के पश्चात् पुणे के डेक्कन कॉलेज में खंडेराव द्वारा सांखलिया सर के निर्देशन में शोध कार्य का आरंभ, यूनेस्को स्कॉलरशिप के लिए उसका चयन, यूनेस्को फाउंडेशन के बैनर तले 'उत्क्रांति' विषय पर उसका शोधपरक व्याख्यान आदि प्रसंगों के क्रमिक समावेश के साथ इस खंड की समाप्ति होती है।

खंड छ: की शुरुआत खंडेराव के सिंध प्रान्त से मोरगांव की यात्रा से होती है, जो अपने प्रतीकात्मक अर्थ में खंडेराव की शोध-अनुधान की बुद्धिजीवी दुनिया से खेती-बाड़ी का श्रमजीवी दुनिया में लौट आने की एक मानसिक अंतर्यात्रा है। खंडेराव के पिता का गंभीर रूप से बीमार पड़ना और मृत्युशय्या पर पहुँचना, इस अंतर्यात्रा की परिस्थिति तैयार करता है। लेखक ने यहाँ बिठ्ठलराव की मृत्यु को एक आकस्मिक घटना न बनाकर उसके पूरे प्रसंग को सामाजिक पारिवारिक सरोकारों व स्थानीय परिवेश से जोड़कर अंकित किया है। अंतिम संस्कार, दशकर्म, तेरहीं की स्थानीय कर्मकांडी परंपराओं के निर्वाह का प्रसंग कुछ अधिक लंबे खिंच गए हैं। खंडेराव के बहनोइयों के माध्यम से ससुराल में अकर्मण्य भाव से जमकर बैठे हुए दामादों की लोभ-लिप्सा, विकास की आड़ में पर्यावरण के निरंतर हो रहे दोहन जैसे गंभीर मसले अंत में जहाँ-तहाँ उठाए गए हैं।

भारतीय समाज की एक और बड़ी समस्या ने नेमाड़े जी को उद्वेलित किया है, वह है समाज में वृद्धों की उपेक्षा व बदहाली। 'हिंदू' में बड़े ही जोरदार तरीके से इसे भी अभिव्यक्ति मिली है। अपनी ही संतानों द्वारा वृद्ध माता-पिता को निरर्थक और बेकार समझकर उपेक्षा करने की प्रवृत्ति एक सामाजिक महामारी का रूप ले रही है। नेमाड़े जी एक संवेदी साहित्यकार हैं। उनका समाजशास्त्रीय बोध इस महामारी को नजरअदाज नहीं कर सकता था- "...... बूढ़ों के कुल्हे धोकर भविष्य में क्या मिलता है? मरे सो गए। जो कुछ उनके लिए किया, वह वहीं खत्म हो जाता है। बच्चों को इनके लिए जो करना है वह केवल अपनी संतुष्टि के लिए। आने वाले नए युग का दर्शन यही होगा कि बुढ़ापे में पारिवारिक सहारा नहीं मिलेगा। गाँव-गाँव प्राइमरी स्कूल की तरह वृद्धाश्रम अभी से बनवाना शुरू करो- भविष्य के बूढ़ों की तरह यानी आज के जवानों।"

जिस खंडेराव ने अपने पिता और भावडू की तरह मोरगाँव की पैतृक खेती-बाड़ी में कभी रूचि नहीं ली सदैव अध्ययन-अनुसंधान के सपनों में उड़ता रहा, वह अन्ततः सभी बंधनों को तोड़कर वापस अपने गाँव लौटता है। भारतीय ग्रामीण युवकों के भीतर शहरी जीवन की जो लिप्सा पैदा होती है, नेमाड़े जी ने उसकी गहरी पड़ताल की है और किसी-न-किसी रूप में खंडेराव के चरित्रांकन में भी उसे रेखांकित करने की पूरी कोशिश की है। अपने पिता का खानदानी व्यवसाय संभालने और अपनी रूचि व गति के अनुरूप अपने व्यावसायिक जगत का निर्माण स्वयं करने के बीच का अंतर्द्वन्द्व इस रचना के लेखक का मानो अपना अंतर्द्वन्द्व बन गया है।

भालचन्द्र नेमाड़े की यह रचना अपनी ठेठ-शैली के कारण अधिक सशक्त बन गई है। क्षोभ व आक्रोश में आकर अनेक स्थानों पर आपत्तिजनक शब्दों व गालियों का प्रयोग इसकी भाषा को एक अलग स्वरूप प्रदान करता है। हालांकि ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचा भी जा सकता था। मराठवाड़े की स्थानीय शब्दावली व मुहावरों का प्रयोग 'हिंदू' को मराठी मानुष के लोक से बाहर नहीं निकलने देते। उपन्यास के कथासूत्र अनेक स्थलों पर परस्पर उलझे हुए रूप में पाठक के समक्ष आते हैं, जिन्हें सुलझाते रहने की चुनौती का सामना उसे बार-बार करना पड़ता है। भारतीय समाज की गझिन परतों व उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंतर्संबंधों का एक पूरा विश्वकोश यहाँ मौजूद है, जो 'हिंदू' के समाजशास्त्रीय शोध ग्रंथ होने का भ्रम पैदा करता है। मुख्य रूप से दलितों, स्त्रियों व किसानों के जीवन के बहुस्तरीय पक्षों की पड़ताल एवं देश की शिक्षा-व्यवस्था के कलुषित पक्ष को रेखांकित करती यह रचना भालचंद्र नेमाड़े के ज्ञान, अनुभव व शोध-दृष्टि का प्रत्यक्ष प्रमाण जान पड़ती है।

75, शुभम अपार्टमेंट्स,
इंद्रप्रस्थ विस्तार, दिल्ली-110092